नईदुनिया

संपादकीय

मानसून की बेरुखी और खेती पर बढ़ता संकट

भारत की कृषि आज भी मानसून की धड़कनों पर चलती है। देश के लगभग आधे से अधिक कृषि क्षेत्र की सिंचाई अब भी वर्षा पर निर्भर है। ऐसे में मानसून की धीमी चाल या असमान वितरण केवल मौसम का विषय नहीं रहता, बल्कि किसानों की आय, खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण अर्थव्यवस्था का प्रश्न बन जाता है। इस वर्ष भी जून में कमजोर मानसून और कम वर्षा ने यही चिंता पैदा की। हालांकि जुलाई के शुरुआती दिनों में कुछ इलाकों में बारिश ने राहत दी है, लेकिन मौसम विभाग का अनुमान है कि पूरे जुलाई महीने में वर्षा सामान्य से कम रह सकती है।

मध्यप्रदेश की स्थिति विशेष चिंता का विषय है, क्योंकि इसे देश का 'सोयाबीन राज्य' कहा जाता है। यहां खरीफ की खेती का बड़ा हिस्सा समय पर होने वाली वर्षा पर निर्भर करता है। सोयाबीन, धान, मक्का, उड़द और कपास जैसी फसलों की बुआई का सबसे महत्वपूर्ण समय जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के पहले पखवाड़े तक होता है। यदि इस अवधि में पर्याप्त नमी नहीं मिलती, तो बुआई प्रभावित होती है और कई किसानों को दोबारा बीज डालने की नौबत आ जाती है। मौसम आधारित कृषि परामर्श भी किसानों को पर्याप्त वर्षा होने के बाद ही बुआई करने और आवश्यकता पड़ने पर कम अवधि वाली किस्मों को अपनाने की सलाह दे रहा है।

कमजोर मानसून का असर केवल खेत तक सीमित नहीं रहता। इससे भूजल स्तर, जलाशयों का भंडारण, पशुपालन और ग्रामीण रोजगार भी प्रभावित होते हैं। मध्यप्रदेश के मालवा, निमाड़, बुंदेलखंड और विंध्य क्षेत्र पहले ही अनियमित वर्षा की मार झेलते रहे हैं। यदि वर्षा का वितरण असंतुलित रहा, तो उत्पादन घटने के साथ किसानों की लागत बढ़ेगी और बाजार में खाद्यान्न तथा तिलहन की कीमतों पर भी दबाव बढ़ सकता है। देशभर में खरीफ फसलों की बुआई पर भी कमजोर मानसून का असर दिखाई दिया है।

जलवायु परिवर्तन ने इस चुनौती को और गंभीर बना दिया है। अब केवल कम वर्षा ही समस्या नहीं है, बल्कि कभी लंबे सूखे के बाद अचानक अत्यधिक वर्षा और बाढ़ जैसी स्थितियां भी खेती को नुकसान पहुंचा रही हैं। मौसम की यह अनिश्चितता पारंपरिक कृषि पद्धतियों को लगातार कमजोर कर रही है। इसलिए कृषि को जलवायु-अनुकूल बनाने की दिशा में तेज़ी से काम करना समय की मांग है।

समाधान केवल अच्छी बारिश की प्रतीक्षा नहीं हो सकता। मध्यप्रदेश में सूक्ष्म सिंचाई, वर्षा जल संचयन, खेत तालाब, जल संरक्षण और फसल विविधीकरण को प्राथमिकता देनी होगी। किसानों तक मौसम की सटीक और समयबद्ध जानकारी पहुंचाना, गुणवत्तापूर्ण बीज उपलब्ध कराना तथा फसल बीमा और राहत योजनाओं का त्वरित क्रियान्वयन भी उतना ही आवश्यक है। साथ ही, सिंचाई परियोजनाओं को समय पर पूरा कर वर्षा पर निर्भरता कम करनी होगी।

मानसून की बेरुखी हमें यह याद दिलाती है कि कृषि केवल प्रकृति के भरोसे नहीं छोड़ी जा सकती। बदलती जलवायु के दौर में खेती को अधिक लचीला, वैज्ञानिक और जल-संरक्षण आधारित बनाना ही भविष्य का रास्ता है। मध्यप्रदेश जैसे कृषि प्रधान राज्य के लिए यह केवल खेती बचाने का नहीं, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था, किसानों की आजीविका और प्रदेश के समग्र विकास को सुरक्षित रखने का प्रश्न है। समय रहते दूरदर्शी नीति और प्रभावी क्रियान्वयन ही इस चुनौती का स्थायी समाधान बन सकते हैं।

आजकल

कृत्रिम बुद्धिमत्ताः अवसर अधिक या रोजगार का संकट?

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) ने दुनिया भर में काम करने के तरीके को तेजी से बदलना शुरू कर दिया है। शिक्षा, स्वास्थ्य, बैंकिंग, उद्योग, मीडिया और सरकारी सेवाओं तक इसका उपयोग लगातार बढ़ रहा है। ऐसे में सबसे बड़ा सवाल यह है कि क्या एआई रोजगार छीन लेगा या नए अवसर पैदा करेगा? इसका उत्तर न तो पूरी तरह सकारात्मक है और न ही पूरी तरह नकारात्मक।

विश्व आर्थिक मंच की हालिया रिपोर्ट के अनुसार, आने वाले वर्षों में एआई और ऑटोमेशन के कारण अनेक पारंपरिक नौकरियां प्रभावित होंगी, लेकिन इसके साथ ही डेटा विश्लेषण, साइबर सुरक्षा, मशीन लर्निंग, एआई प्रबंधन और डिजिटल सेवाओं जैसे क्षेत्रों में बड़ी संख्या में नए रोजगार भी सृजित होंगे। अर्थात चुनौती रोजगार समाप्त होने की नहीं, बल्कि बदलते कौशल की है।

भारत जैसे युवा देश के लिए यह परिवर्तन अवसर भी है और चेतावनी भी। यदि शिक्षा व्यवस्था समय रहते डिजिटल कौशल, नवाचार और व्यावहारिक प्रशिक्षण पर जोर नहीं देती, तो बड़ी संख्या में युवा प्रतिस्पर्धा में पीछे रह सकते हैं। दूसरी ओर, सही नीतियों और कौशल विकास के माध्यम से भारत वैश्विक एआई अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण केंद्र बन सकता है।

हालांकि एआई का उपयोग केवल आर्थिक प्रश्न नहीं है। इसके साथ निजता, डेटा सुरक्षा, गलत सूचना, कॉपीराइट और नैतिक जवाबदेही जैसे गंभीर मुद्दे भी जुड़े हैं। इसलिए तकनीक के विकास के साथ प्रभावी नियमन और पारदर्शिता भी उतनी ही आवश्यक है।

एआई को रोजगार का शत्रु मानना उचित नहीं होगा। इतिहास बताता है कि हर तकनीकी क्रांति ने कुछ पुराने काम समाप्त किए हैं, लेकिन नए क्षेत्रों का भी निर्माण किया है। आवश्यकता इस बात की है कि सरकार, उद्योग और शैक्षणिक संस्थान मिलकर कौशल विकास, अनुसंधान और नवाचार को बढ़ावा दें। भविष्य उसी का होगा जो नई तकनीक से डरने के बजाय उसे सीखकर अपनी क्षमता का विस्तार करेगा।

भारत की एकता और प्रगति के लिए समर्पित जीवन

नरेन्द्र मोदी

छह जुलाई, उन अनगिनत लोगों के लिए एक विशेष दिन है, जो देशभक्ति और निस्वार्थ सेवा के आदर्शों को मानते हैं। हम डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी की 125वीं जयंती मना रहे हैं, जिनका जीवन साहस और माँ भारती के प्रति अटूट समर्पण का एक कालातीत उदाहरण है। आधुनिक भारत में ऐसे बहुत कम नेता हुए हैं, जिनमें बुद्धि, जनसेवा और नैतिक दृढ़ता का ऐसा अद्भुत संगम देखने को मिला हो।

युवा श्यामा प्रसाद का जन्म ऐसे परिवेश में हुआ था, जहाँ उन्हें आसानी से एक सुरक्षित और आरामदायक जीवन मिल सकता था। उनके पिता, सर आशुतोष मुखर्जी, अपने समय के प्रमुख शिक्षाविदों और बुद्धिजीवियों में से एक थे। भाग्य ने उन्हें सुख-सुविधाओं का मार्ग दिखाया, इसके बावजूद, उनकी अंतरात्मा ने उन्हें त्याग और राष्ट्र-सेवा के रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित किया। उन्हें पक्का यकीन था कि वे अपने समय की उथल-पुथल भरी परिस्थिति में मूकदर्शक बने नहीं रह सकते, -चाहे वह उपनिवेशवाद, सांप्रदायिकता या मानवीय चुनौतियों के खिलाफ लड़ाई ही क्यों न हो। इस यात्रा में उन्होंने गहरी व्यक्तिगत त्रासदियों का सामना किया, जिसमें एक शिशु और बाद में उनकी पत्नी की मौत शामिल है। तथापि, इन त्रासदियों ने केवल उनके संकल्प को और सुदृढ़ किया और सेवा के प्रति उनकी अटूट प्रतिबद्धता को मजबूत किया।

अगर कोई एक आदर्श था, जो डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी के सार्वजनिक जीवन को सबसे ज्यादा परिभाषित करता था, तो वह था भारत की अखंडता। विभाजन के उथल-पुथल भरे दौर में वे मजबूती से डटे रहे और सुनिश्चित किया कि पश्चिम बंगाल भारत का एक अभिन्न अंग बना रहे। कुछ साल बाद, यही विश्वास उन्हें जम्मू और कश्मीर की ओर ले गया। कारावास ने उन्हें हतोत्साहित नहीं किया और अलगाव ने उन्हें कमजोर नहीं किया। उनका जीवन हिरासत में अचानक समाप्त हो गया, उन अनगिनत लोगों से दूर - जिनकी पीड़ा को उन्होंने अपना उद्देश्य बनाया था। इतिहास में ऐसे पल आते हैं, जब किसी व्यक्ति का अंतिम बलिदान राजनीति से परे जाकर राष्ट्रीय स्मृति में शामिल हो जाता है। डॉ. मुखर्जी की अंतिम यात्रा भी ऐसा ही एक पल रही। आचार्य विनोबा भावे ने कहा कि डॉ. मुखर्जी ने उस मकसद के लिए खुद को बलिदान कर दिया, जिसमें उन्हें विश्वास था। सालों बाद, 2019 में अनुच्छेद 370 और 35(ए) को रद्द करना उनकी शहादत के प्रति सबसे सच्ची श्रद्धांजलि थी।

डॉ. मुखर्जी ने भारत और भारतीय मूल्यों को सबसे ऊपर रखा। उन्होंने ऐसे संस्थान बनाए और ऐसी प्रणालियाँ विकसित कीं, जो उस समय की पारंपरिक सोच को चुनौती देती थीं। वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के सबसे युवा कुलपति बने। अपने विशिष्ट अंदाज़ में, उन्होंने ऐसे सकारात्मक बदलाव किए, जो देशभक्तिपूर्ण और भविष्योन्मुखी थे। शिक्षाविदों के एक सम्मेलन को संबोधित करते हुए, डॉ. मुखर्जी ने बहुत अच्छे तरीके से इस बात को व्यक्त किया: 'शैक्षिक संस्थानों को केवल लिपिक और कम वेतन पाने वाले कर्मचारियों का उत्पादन करने वाली फैक्ट्रियों के रूप में देखना गलत है। हमें ऐसे छात्र तैयार करने होंगे, जो हमारे स्व-शासी संस्थानों - जैसे नगर निगम, प्रांतीय और केंद्रीय विधायिका - का नेतृत्व कर सकें और साथ ही जीवन के विभिन्न क्षेत्रों - जैसे वित्तीय, वाणिज्यिक और औद्योगिक - में कामकाज का संचालन कर सकें।

डॉ. मुखर्जी ने भारत और भारतीय मूल्यों को सबसे ऊपर रखा। उन्होंने ऐसे संस्थान बनाए और ऐसी प्रणालियाँ विकसित कीं, जो उस समय की पारंपरिक सोच को चुनौती देती थीं। वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के सबसे युवा कुलपति बने। अपने विशिष्ट अंदाज़ में, उन्होंने ऐसे सकारात्मक बदलाव किए, जो देशभक्तिपूर्ण और भविष्योन्मुखी थे। शिक्षाविदों के एक सम्मेलन को संबोधित करते हुए, डॉ. मुखर्जी ने बहुत अच्छे तरीके से इस बात को व्यक्त किया: 'शैक्षिक संस्थानों को केवल लिपिक और कम वेतन पाने वाले कर्मचारियों का उत्पादन करने वाली फैक्ट्रियों के रूप में देखना गलत है। हमें ऐसे छात्र तैयार करने होंगे, जो हमारे स्व-शासी संस्थानों - जैसे नगर निगम, प्रांतीय और केंद्रीय विधायिका - का नेतृत्व कर सकें और साथ ही जीवन के विभिन्न क्षेत्रों - जैसे वित्तीय, वाणिज्यिक और औद्योगिक - में कामकाज का संचालन कर सकें।'

उनके नेतृत्व में, कलकत्ता विश्वविद्यालय ने अनूठे प्रयास किए, जैसे पुस्तकालय अवसंरचना में सुधार करना, विज्ञान में शोध को बढ़ावा देना, कलाकृतियों के अध्ययन को प्रोत्साहित करना और कृषि में पाठ्यक्रम स्थापित करना, आदि। उन्होंने खेल, शिक्षक प्रशिक्षण और छात्र कल्याण जैसे क्षेत्रों पर भी ध्यान दिया। छात्रों और पूर्व छात्रों में गर्व की भावना जगाने के लिए, उन्होंने 24 जनवरी को विश्वविद्यालय के स्थापना दिवस के तौर पर मनाने की शुरुआत की। उन्होंने स्वयं गुरुदेव टैगोर से विश्वविद्यालय के लिए एक गीत की रचना करने का आग्रह किया।

उनकी इस भावना का एक अन्य उदाहरण, उनके जीवन के बाद के दौर में देखने को मिलता है, जब उन्होंने भारतीय जनसंघ बनाने का फैसला किया। एक ऐसे समय, जब कांग्रेस पार्टी का हर जगह बोलबाला था, उन्हें लगा कि भारत की प्रगति के लिए एक ऐसे वैकल्पिक आवाज बनाने के कारण मौजूद हैं, जो हमारी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ी हो। शायद यह उचित ही था कि पार्टी का चुनाव चिह्न 'दीया' - मिटटी का दीपक - रखा गया। एक छोटा सा दीपक साधारण लग सकता है, लेकिन इसमें इतनी ताकत होती है कि यह अपने से बहुत दूर तक अंधकार को दूर कर सकता है। जनसंघ ने भी ठीक यही काम किया—चाहे उनके सक्रिय रहने के दौरान हो या उसके बाद हो।

भारत के पहले उद्योग और आपूर्ति मंत्री के तौर पर डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी का कार्यकाल एक ऐसे राजनेता की छवि पेश करता है, जिनके विकास का दृष्टिकोण बहुत व्यापक और मानवीय था। उन्होंने उद्योग को नव स्वतंत्र राष्ट्र में सम्मान, अवसर और आत्मविश्वास को पुनर्स्थापित करने का साधन माना। वे धन सृजन और मूल्य संवर्धन का सम्मान करते थे। दामोदर घाटी निगम, सिंदरी उर्वरक संयंत्र और एक मजबूत औद्योगिक नीति जैसी महत्वपूर्ण पहलों के माध्यम से आधुनिक औद्योगिक भारत की आधारशिला रखते हुए, उन्होंने यह भी सुनिश्चित किया कि भारत की पारंपरिक खूबियों की अनदेखी न हो। हथकरघा, कुटीर उद्योगों, कारीगरों और वस्त्र मज़दूरों को डॉ. मुखर्जी के रूप में एक ऐसा समर्थक मिला, जो उनके लिए पूरी तरह समर्पित था।

यहाँ, मैं एक व्यक्तिगत अनुभव साझा करना चाहूँगा। सिंदरी संयंत्र, जिसे डॉ. मुखर्जी ने आत्मनिर्भरता की स्पष्ट दृष्टि के साथ स्थापित किया था, को उन लोगों ने नजरअंदाज किया, जो कई दशकों तक राष्ट्र चला रहे थे। मुझे गर्व महसूस होता है कि हमारी सरकार को इसके पुनरुद्धार में योगदान देने का अवसर मिला। उस कार्यक्रम में उपस्थिति, वास्तव में मेरे लिए सबसे खास पलों में से एक थी।

भारत की सभ्यतागत परंपरा में लंबे समय से संवाद और चर्चा को महत्व दिया गया है। डॉ. मुखर्जी इस लोकतांत्रिक भावना के प्रतीक थे। वे पंडित नेहरू की कैबिनेट में शामिल हुए, क्योंकि उनका मानना था कि शुरुआती वर्षों में राष्ट्र-निर्माण का काम राजनीतिक मतभेदों से कहीं ऊपर था। उन्होंने ईमानदारी और रचनात्मक भावना के साथ सेवा की। लेकिन जब उन्हें लगा कि राष्ट्रीय महत्व के मुद्दों के लिए अलग रास्ते की ज़रूरत है, तो उन्होंने सम्मान के साथ अपना पद त्याग दिया और पूरी तरह से उस राजनीतिक काम के लिए समर्पित हो गए, जिसे वे राष्ट्र के लिए आवश्यक मानते थे।

75 साल पहले, पंडित नेहरू पहला संशोधन लाए थे, जो अभिव्यक्ति की आज़ादी पर सीधा हमला था। डॉ. मुखर्जी इसके कट्टर आलोचकों में से एक थे। वे अच्छी तरह समझते थे कि कांग्रेस क्या कर सकती है और वे सही साबित हुए। जिन लोगों ने 75 साल पहले पहला संशोधन किया था, उन्होंने ही 1975 में आपातकाल लगाया और 50 साल पहले 42वां संशोधन अधिनियम लेकर आये, जिसने एक बार फिर उदारवादी लोकतांत्रिक मूल्यों की नींव पर चोट की।

डॉ. मुखर्जी मानवतावादी कार्यों के लिए भी जाने जाते थे। जब 1943 में बंगाल में सबसे भयंकर अकाल पड़ा, डॉ. मुखर्जी प्रभावित लोगों की सेवा में पूरी तरह जुट गए। उन्होंने लोगों को खाना खिलाने के लिए कई कैंटीन और राहत केंद्र खुलवाए। एक तरफ, वे अपने लोगों की हालत देखकर बहुत दुखी थे, तो दूसरी तरफ, औपनिवेशिक शासकों की संवेदनहीनता ने उन्हें झकझोर दिया। उन्होंने एक किताब भी लिखी, 'पंचासेर मन्वंतर', जिसमें उन्होंने अपना आक्रोश व्यक्त किया। जब 1942 में मेदिनीपुर में ज़बरदस्त चक्रवात आया, तो हालात को सामान्य करने में उनकी कोशिशों की व्यापक रूप से सराहना हुई।

कोलकाता के एक कॉलेज के अपने संबोधन में डॉ. मुखर्जी ने युवाओं से आग्रह किया, 'आप जो भी काम करें, उसे गंभीरता से, पूरी तरह से और अच्छी तरह से करें; इसे कभी भी आधा-अधूरा या बिना किये न छोड़ें, जब तक आप इसमें अपना सर्वश्रेष्ठ न दे दें, तब तक खुद को संतुष्ट महसूस न करें।' जैसे-जैसे भारत विकसित भारत के लक्ष्य की ओर आगे बढ़ रहा है, हम उन्हें सबसे अच्छी श्रद्धांजलि इस रूप में दे सकते हैं कि हम मजबूत, एकजुट, आत्मविश्वासी और सहानुभूतिपूर्ण भारत के निर्माण के लिए हर दिन प्रयास करें, जिसमें वे बहुत गहराई से विश्वास करते थे। और आज के युवाओं को समझते हुए, मुझे यकीन है कि वे इस अवसर पर आगे आएंगे और बिल्कुल वैसा ही प्रयास करेंगे।

(लेखक भारत के प्रधानमंत्री हैं।)

डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी की चिरस्थाई विरासत : संस्थाएं, विचार और राष्ट्र निर्माण

गजेंद्र सिंह शेखावत

इतिहास अक्सर महान नेताओं को उनके राजनीतिक संघर्षों के जरिए याद करता है। लेकिन राजनेताओं के चिरस्मरणीय योगदान राजनीति के दायरे तक ही सीमित नहीं होते। उनकी वास्तविक विरासत उनके द्वारा सृजित संस्थाओं, परिपोषित विचारों और आने वाली पीढ़ियों के लिए छोड़े गए आदर्शों में होती है। राष्ट्र भारत केसरी डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी का 125वां जन्म दिवस मना रहा है। इस अवसर पर उनके सार्वजनिक जीवन के एक ऐसे पहलू को स्मरण करना प्रासंगिक होगा जिसकी ओर व्यापक रूप से गौर करने की जरूरत है। यह पहलू है, राष्ट्र निर्माण की बुनियाद के रूप में संस्थाओं का सृजन करने की उनकी आजीवन प्रतिबद्धता। स्वतंत्र भारत का उदय सिर्फ एक राजनीतिक संघर्ष से नहीं हुआ। उसे विश्वविद्यालय बनाने थे जो नागरिकों को शिक्षित करने में सक्षम हों। ऐसी अनुसंधान संस्थाएं खड़ी करनी थीं जो वैज्ञानिक ज्ञान का प्रसार कर सकें। उसे ऐसे उद्योग तैयार करने थे जो आर्थिक आत्मनिर्भरता पैदा कर सकें। सभ्यता की विरासत की रक्षा करने वाले सांस्कृतिक संगठनों और लोकतांत्रिक मूल्यों को मजबूती देने वाली लोक संस्थाओं को तैयार करना था। डॉ. मुखर्जी ने जल्दी ही समझ लिया था कि राष्ट्र का भविष्य सिर्फ दूरद्रष्टा नेतृत्व पर ही निर्भर नहीं करता। यह उन मजबूत संस्थाओं पर भी निर्भर करता है जो नेताओं और सरकारों से ज्यादा टिकाऊ होंगी।

उनका असाधारण शैक्षिक कॅरियर उनके विश्वास को प्रतिबिंबित करता है। वह कलकत्ता विश्वविद्यालय के सबसे कम उम्र के कुलपति बने। उन्होंने वैसे समय में यह कार्यभार संभाला जब उच्चतर शिक्षा भारत के बौद्धिक जागरण का केंद्र बन रही थी। उनके लिए विश्वविद्यालय सिर्फ स्नातक तैयार करने के स्थल नहीं थे। वे वैसे सुविज्ञ नागरिकों को गढ़ने वाले संस्थान थे जो सार्वजनिक जीवन में जिम्मेदारी के साथ योगदान करने में सक्षम हों। उनकी राय थी कि शिक्षा को राष्ट्र निर्माण के वृहत्तर कार्य से अलग नहीं किया जा सकता।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी प्रगति के प्रति उनका समर्पण विश्वविद्यालयों के परिसर से कहीं आगे बढ़कर था। भारतीय विज्ञान संस्थान, बेंगलुरु की कोर्ट और काउंसिल के सदस्य के तौर पर, उन्होंने भारत के प्रमुख वैज्ञानिक अनुसंधान केंद्रों में से एक को मज़बूत बनाने में योगदान दिया। 1947 में, उन्होंने 'डिपार्टमेंट ऑफ़ पावर इंजीनियरिंग' की आधारशिला रखी क्योंकि वे भली-भांति समझते थे कि स्वतंत्र भारत की आर्थिक प्रगति के लिए इंजीनियरिंग की शिक्षा और प्रौद्योगिकी क्षमता बहुत ज़रूरी होगी। नवाचार को मुख्य नीतिगत लक्ष्य बनाए जाने से बहुत पहले ही, उन्होंने यह समझ लिया था कि वैज्ञानिक उत्कृष्टता और औद्योगिक विकास ही देश की दीर्घकालिक मज़बूती तय करेंगे।

स्वतंत्रता के बाद, जब डॉ. मुखर्जी भारत के पहले उद्योग और आपूर्ति मंत्री बने, तब इस दृष्टिकोण को व्यावहारिक रूप दिया गया। उन शुरुआती सालों में, नए नए आज़ाद देश के सामने एक औद्योगिक आधार तैयार करने की बड़ी चुनौती थी। चित्तरंजन लोकोमोटिव वर्क्स और सिंदरी फर्टिलाइज़र फैक्ट्री जैसे संस्थान सिर्फ़ मैन्युफैक्चरिंग इकाइयों के तौर पर नहीं, बल्कि तकनीकी क्षमता और आर्थिक आत्मनिर्भरता हासिल करने के भारत के संकल्प के प्रतीक के तौर पर स्थापित किए गए थे। डॉ. मुखर्जी के लिए, औद्योगीकरण कभी भी अपने आप में कोई अंतिम लक्ष्य नहीं था; यह राष्ट्रीय क्षमता और सामूहिक आत्मविश्वास में किया गया एक निवेश था।

हालाँकि, किसी भी संस्थान के निर्माण के लिए केवल भौतिक अवसंरचना या प्रशासनिक कुशलता की ही ज़रूरत नहीं होती। इसके लिए सहानुभूति, जन-सेवा और नैतिक ज़िम्मेदारी की भावना की भी आवश्यकता होती है। डॉ. मुखर्जी में इन गुणों की झलक 1943 के बंगाल अकाल के दौरान ही साफ़ तौर पर दिखाई दी थी, जब उन्होंने बीसवीं सदी की सबसे बड़ी मानवीय त्रासदी से प्रभावित लोगों के लिए बड़े पैमाने पर राहत कार्य करने में खुद को समर्पित कर दिया था। विभाजन के बाद, उन्होंने विस्थापित लोगों के पुनर्वास के लिए बड़े पैमाने पर काम किया। वे समझते थे कि राष्ट्र के पुनर्निर्माण में संस्थानों को फिर से खड़ा करने के साथ-साथ लोगों के दुख दर्द को कम करना और उस पर मरहम लगाना भी उतना ही महत्वपूर्ण है।

उनका सार्वजनिक जीवन, भारत की सांस्कृतिक विरासत के प्रति गहरी समझ और सम्मान को भी दर्शाता था। 'महाबोधि सोसाइटी ऑफ़ इंडिया' के अध्यक्ष के तौर पर, उन्होंने बौद्ध देशों के साथ भारत के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक संबंधों को मज़बूत करने में अहम भूमिका निभाई। सभ्यतागत कूटनीति के स्थायी महत्व को समझते हुए, बुद्ध के मुख्य शिष्यों-अर्हत सारिपुत्र और अर्हत मौद्गल्यायन-के पवित्र अवशेषों का भारत में स्वागत करने में उन्होंने सक्रिय रूप से हिस्सा लिया। आज भी, मंगोलिया जैसे देशों के साथ इन पवित्र अवशेषों को साझा करने की भारत की कोशिशें यह दिखाती हैं कि किस तरह सांस्कृतिक विरासत अंतरराष्ट्रीय सद्भावना को मज़बूत करती है और ऐतिहासिक संबंधों को और गहरा बनाती है।

साहित्य और विद्वता के प्रति भी उनकी चिंता उतनी ही स्पष्ट थी। उनके पत्रों से पता चलता है कि उन्होंने प्रसिद्ध कवि काज़ी नज़रुल इस्लाम की उनके व्यक्तिगत संकट के समय किस तरह मदद की थी। ऐसी घटनाएँ हमें याद दिलाती हैं कि सार्वजनिक नेतृत्व को केवल बड़े नीतिगत फैसलों से ही नहीं, बल्कि उदारता के उन शांत और मौन कार्यों से भी आंका जाता है, जिन पर शायद ही कभी लोगों का ध्यान जाता है। डॉ. मुखर्जी ने संस्थागत निर्माण के इसी दृष्टिकोण को संविधान सभा में भी आगे बढ़ाया। संविधान के निर्माण को 'एक बड़ी जिम्मेदारी' और 'एक गंभीर और पवित्र विश्वास' के रूप में वर्णित करते हुए, उन्होंने संवैधानिक शासन के साथ जुड़ी नैतिक ज़िम्मेदारियों पर ज़ोर दिया। उनके वे शब्द आज भी बेहद प्रासंगिक हैं। संविधान की ताकत अंततः न केवल उसके लिखित प्रावधानों पर, बल्कि संसद की शुचिता, सार्वजनिक संस्थानों की स्वतंत्रता, कानून के शासन और नागरिकों की जिम्मेदारी पर भी निर्भर करती है। संवैधानिक लोकतंत्र तभी फलता-फूलता है जब संस्थाओं पर जनता का भरोसा हो और वे ईमानदारी से काम करें।

जैसे-जैसे भारत एक विकसित राष्ट्र बनने के लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहा है, डॉ. मुखर्जी की सोच हमें एक ज़रूरी बात याद दिलाती है। सिर्फ़ आर्थिक विकास से ही देश की तरक्की तय नहीं होती। संवहनीय विकास के लिए शिक्षा, वैज्ञानिक अनुसंधान, तकनीकी नवाचार, सांस्कृतिक संरक्षण और लोगों का भरोसा जगाने वाले संस्थानों में लगातार निवेश की ज़रूरत होती है।

सड़कें, हवाई अड्डे और कारखाने बेहद जरूरी हैं, लेकिन उतने ही जरूरी वे विश्वविद्यालय भी हैं जो जिज्ञासा को प्रोत्साहित करते हैं, वे प्रयोगशालाएँ जो ज्ञान का विस्तार करती हैं, वे संग्रहालय जो विरासत को संजोते हैं और वे सार्वजनिक संस्थान जो संवैधानिक मूल्यों की रक्षा करते हैं, वे भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं। संस्थाओं में एक अद्भुत गुण होता है: वे सरकारों, राजनीतिक आंदोलनों और यहाँ तक कि कई पीढ़ियों से भी ज़्यादा समय तक बनी रहती हैं। वे संचित ज्ञान को संजोकर रखती हैं, बदलाव के बीच निरंतरता बनाए रखती हैं और समाज को दीर्घकालिक राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त करने में सक्षम बनाती हैं। नेता इतिहास को आकार दे सकते हैं, लेकिन संस्थाएं सभ्यता को जीवित रखती हैं।

डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी के सार्वजनिक जीवन का सबसे अहम सबक यही है। उनकी विरासत केवल उन पदों तक सीमित नहीं है जो उन्होंने संभाले या उन बहसों में भी नहीं है जिनमें उन्होंने हिस्सा लिया, बल्कि यह उनके उस अटूट विश्वास में निहित है कि मजबूत संस्थान ही किसी राष्ट्र की आकांक्षाओं के सच्चे संरक्षक होते हैं। जैसे-जैसे भारत अपनी विकास यात्रा पर आगे बढ़ रहा है, ज्ञान, वैज्ञानिक चेतना, सांस्कृतिक आत्मविश्वास और संवैधानिक मूल्यों को बढ़ावा देने वाले संस्थानों को मजबूत करना ही उनके प्रति सबसे सार्थक श्रद्धांजलि होगी।

(लेखक केंद्रीय संस्कृति एवं पर्यटन मंत्री हैं।)

लड़कियों पर बढ़ता नशे का प्रभाव : एक गंभीर सामाजिक समस्या

डॉ. विजय गर्ग

नशे की लत आज के दौर की सबसे बड़ी सामाजिक और स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियों में से एक बन गई है। पहले नशे को मुख्य रूप से पुरुषों से जोड़ा जाता था, लेकिन अब आंकड़े बताते हैं कि लड़कियों और युवा महिलाओं में भी नशे का चलन तेजी से बढ़ रहा है। इस बदलाव ने परिवारों, शिक्षकों, स्वास्थ्य विशेषज्ञों और नीति-निर्माताओं सभी को चिंतित कर दिया है। यह केवल किसी एक व्यक्ति की समस्या नहीं है, बल्कि एक व्यापक सामाजिक चुनौती है, जिसके लिए सामूहिक ध्यान और प्रयास जरूरी हैं।

इसके पीछे कई कारण आपस में जुड़े हुए हैं। तेजी से बदलता समाज, पढ़ाई का दबाव, करियर की महत्वाकांक्षा, भावनात्मक तनाव, दोस्तों का प्रभाव और सोशल मीडिया का असर-इन सबका बड़ा योगदान है। कई बार लड़कियां ऐसे माहौल में रहती हैं, जहां नशे को सामान्य माना जाता है या उसे आजादी, आत्मविश्वास और आधुनिक जीवनशैली का प्रतीक बताया जाता है। ऐसी सोच के कारण प्रयोग के तौर पर नशा करना आसान लगने लगता है, जबकि इसके परिणाम बहुत खतरनाक हो सकते हैं।

मानसिक स्वास्थ्य भी इसमें अहम भूमिका निभाता है। कई किशोरियां और युवा महिलाएं चिंता, अवसाद, अकेलेपन, आत्मविश्वास की कमी और सामाजिक अपेक्षाओं के दबाव से जूझती हैं। जब पर्याप्त भावनात्मक सहारा नहीं मिलता, तो कुछ लड़कियां समस्याओं से बचने के लिए नशे का सहारा लेती हैं। दुर्भाग्य से नशा किसी समस्या का समाधान नहीं करता, बल्कि भावनात्मक तकलीफ को और बढ़ा देता है। साथ ही, लत और सामाजिक अलगाव जैसी नई मुश्किलें भी पैदा करता है।

दोस्तों का दबाव भी एक बड़ा कारण है। किशोरावस्था में सबके साथ घुलने-मिलने और स्वीकार किए जाने की चाह बहुत मजबूत होती है। कई

लड़कियां समूह से बाहर न हो जाएं, इस डर से नशा आजमाने के लिए मजबूर हो जाती हैं। अलग दिखने या पुराने विचारों वाली कहलाने के डर से वे जोखिम को भूल जाती हैं। इसलिए बच्चों को बचपन से ही स्वतंत्र निर्णय लेने और आत्मविश्वास की शिक्षा देना जरूरी है। सोशल मीडिया और लोकप्रिय संस्कृति के प्रभाव को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। फिल्में, म्यूजिक वीडियो और ऑनलाइन कंटेंट कभी-कभी नशे को स्टाइलिश और रोमांचक दिखाते हैं। इससे सीधे लत नहीं लगती, पर सोच और नजरिए पर असर जरूर पड़ता है, खासकर किशोरावस्था में। इसलिए मीडिया साक्षरता और आलोचनात्मक सोच विकसित करना जरूरी है, ताकि युवा मनोरंजन और हकीकत में फर्क समझ सकें।

लड़कियों में नशे के दुष्परिणाम केवल शारीरिक स्वास्थ्य तक सीमित नहीं हैं। इससे पढ़ाई, रिश्ते और करियर सभी प्रभावित होते हैं। एकाग्रता कम हो जाती है, निर्णय लेने की क्षमता घटती है, भावनात्मक अस्थिरता आती है और कई स्वास्थ्य समस्याएं जन्म लेती हैं। गंभीर मामलों में लत ऐसी मनोवैज्ञानिक और सामाजिक समस्याएं पैदा कर देती है, जिनसे बिना पेशेवर मदद के बाहर निकलना मुश्किल हो जाता है।

परिवार इस लड़ाई में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। खुला संवाद, भावनात्मक सहयोग और एक सुरक्षित घरेलू माहौल नशे के खतरे को बहुत हद तक कम कर सकते हैं। माता-पिता को चाहिए कि वे दोस्तों के दबाव, मानसिक स्वास्थ्य और नशे के नुकसान पर डर या दोष लगाए बिना ईमानदारी से बात करें। जब युवा महसूस करते हैं कि उन्हें समझा जा रहा है, तो वे मुश्किल समय में मदद मांगने से नहीं हिचकते। शैक्षणिक संस्थानों को भी आगे आना होगा। स्कूलों और कॉलेजों में जागरूकता कार्यक्रम, काउंसलिंग और जीवन-कौशल की शिक्षा दी जानी चाहिए। खेल, रचनात्मक गतिविधियां, समाज सेवा और नेतृत्व के अवसर देने से बच्चों को सकारात्मक विकल्प मिलते हैं और वे गलत प्रभावों के सामने मजबूत बनते हैं। सरकार और समाज को मिलकर काम करना होगा। जन-जागरूकता अभियान, सुलभ मानसिक स्वास्थ्य सेवाएं और पुनर्वास कार्यक्रम इस समस्या से निपटने के जरूरी हिस्से हैं। नशे की लत से जूझ रहे लोगों को कलंकित करने के बजाय करुणा, इलाज और समाज में दोबारा जोड़ने पर ध्यान देना चाहिए। समय पर सहयोग और समझ मिले, तो रिकवरी संभव है। साथ ही, हमें सामान्यीकरण और रूढ़ियों से बचना चाहिए। अधिकांश लड़कियां नशे से दूर हैं और आज के कठिन समय में भी बहुत मजबूती दिखाती हैं। उद्देश्य डर फैलाना या दोष देना नहीं है, बल्कि उभरते खतरों को पहचानकर युवाओं की रक्षा के लिए संसाधन देना और उन्हें स्वस्थ विकल्प चुनने के लिए सशक्त बनाना है।

लड़कियों पर नशे का बढ़ता प्रभाव एक गंभीर सामाजिक मुद्दा है, जिस पर परिवार, स्कूल, स्वास्थ्य व्यवस्था और पूरे समाज को ध्यान देना होगा। शिक्षा, भावनात्मक सहारा और सकारात्मक रोल मॉडल के जरिए रोकथाम ही सबसे असरदार उपाय है। यदि हम ऐसा माहौल बना सकें, जहां युवा महिलाएं खुद को सम्मानित, सुना हुआ और समर्थित महसूस करें, तो हम उन्हें स्वस्थ, उत्पादक और संतुष्ट जीवन जीने में मदद कर सकते हैं।